कबीर को याद करते हुए

गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम का नगर है इलाहाबाद। यहां पिछले दिनों पत्रकारों की एक संगोष्ठी मूल्यनिष्ठ समाज के निर्माण में मीडिया की भूमिका पर सम्पन्न हुई जिसमें एक मध्यवयी पत्रकार ने कहा कि वे दावे से कहते हैं कि पत्रकारों को सुरक्षा दे दीजिये, समाज की सारी समस्याएं हल हो जायेंगी, मसलन भ्रष्टाचार, अनाचार आदि समस्याएं। इंदौर में पत्रकारिता में लम्बे समय काम कर रहे एक पत्रकार ने इसी तरह से दावा किया कि संविधान में पत्रकारिता को चतुर्थ स्तम्भ वाकई बना दिया जाये और पत्रकारों की खबरों और विचारों का संज्ञान लेना वैधानिक हो जाये तो सब कुछ बदल जायेगा। आबू में सम्पन्न एक राष्ट्रीय विमर्श में भी इसी तरह कहा गया कि जैसे बड़े अधिकारियों को सुविधायें हैं, अच्छा वेतन है, वह पत्रकारों को भी दे दीजिये और फिर देखिये कि वे क्या कमाल करते हैं। रामपुर उत्तरप्रदेश में ऐसे ही एक विमर्श में विश्वास के साथ कहा गया कि मालिकों को बदल दीजिये, प्रकाशन की बागडोर पत्रकारों को सौंप दीजिये, समाज में सबकुछ ठीक होने लगेगा। संभव है, कुछ इसी तरह का आपने भी सुना हो। पत्रकार इसी तरह से सोचते हैं और मानते हैं कि पत्रकारिता यदि सामाजिक सरोकारों के साथ नहीं जुड़ी हुई है या उसके मूल्य बाजार या उपभोक्तावाद को पोषित करने वाले हो गये हैं या वह मुनाफे के लिए सच-झूठ में कोई भेद नहीं कर पाती है तो उसके कारण वही हैं जो ऊपर बताये गये हैं।

पत्रकारिता की आजादी को लकर ऐसा पहली बार नहीं कहा जा रहा है। आजादी के बाद से ही कई बार ऐसा कहा जाता रहा है। संसद में ऐसी ही एक बहस के दौरान पंडित जवाहरलाल नेहरु ने अमरीकी राष्ट्रपति थामस जैफरसन की ही तरह कहा था कि वे समाचारपत्र विहीन सरकार के पक्षधर नहीं है। यह भी पत्रकारिता की आजादी के संदर्भ में ही कहा गया था। बहुत से बड़े और समझदार पत्रकारों ने अभिव्यक्ति की संवैधानिक आजादी जो व्यक्ति को संविधान से प्राप्त है, को प्रेस की पर्याप्त आजादी माना है। आजादी के विचार पर इस तरह की बहस भी होती रही है कि लिखने या बताने की आजादी किसकी हो और क्या वह उत्तरदायित्व से भी मुक्त हो। याद होगा कि जब अमिताभ बच्चन बीमार थे और प्रेस के कुछ लोगों ने जिस किसी भी तरह से उनकी खबर लेनी चाही थी, तब भी ऐसी ही चर्चा हुई थी। कुछ अन्य मामलों में भी निजता, अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार, निर्णयात्मकता, अधूरे सच को सच की तरह कहने के व्यवहार और असम्मान आदि के प्रसंगों पर ऐसे विमर्श हुए हैं और यह सचमुच ही संतोष की बात है कि ज्यादातर पत्रकारों ने इस पर उत्तरदायी व्यवहार का ही पक्ष लिया है। वे मानते रहे हैं कि संविधान में प्रदत्त अभिव्यक्ति की

आजादी उसके साथ पत्रकारों पर भी लागू रहे, वे इस सच से भी अवगत हैं कि खुद जैफरसन अमरीका के राष्ट्रपति होने के बाद उस तरह का व्यवहार नहीं कर सके जो पद पर आने के पूर्व कहते रहे है। बहुतेरे संचार विशेषज्ञों ने भी माना है कि जन-संचार प्रस्तुत अभिव्यक्ति को स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता पर छोड़ा जाये तो वह वाचिक अभिव्यक्ति से कई गुना अधिक क्षति पहुंचा सकती है। इसे कुछ प्रकरणों में अनुभव भी किया जा चुका है।

हम सबने देखा और अनुभव किया है कि जो वर्ग उच्च शिक्षित रहे हैं, सावधानी से उत्तरदायित्व देने के लिए चुने गये और जिन्हें पर्याप्त सुरक्षा, सुविधा, अधिकार या वर्चस्व आदि सब कुछ सौंपा गया उनका आजादी के बाद के वर्षों में कैसा भ्रष्ट और गैरजिम्मेदार व्यवहार रहा है। भारतीय प्रशासनिक या राज्य प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों और कर्मचारियों के नित नये आ रहे मामले इस सबके गवाह हैं। वे भ्रष्ट क्यों हुए और उन्होंने उन नियम कायदों को ताक पर क्यों रख जिसके लिए वे चुने गये थे, यह तार्किक रुप से समझ से परे हैं। स्थानांतरण या दूसरे अन्य बचाव के कारण ठीक नहीं माने जा सकते हैं। ऐसे ही कम से कम 1980 के बाद से तो पत्रकारिता में अच्छी सुविधा और वेतन पर काम कर रहे पत्रकारों की संख्या बढ़ी है। उनका रुतबा और प्रतिष्ठा भी है। फिर भी नामचीन अखबारों के पत्रकार कारपोरेट और दूसरे व्यवसायी घरानों के हितों की चिन्ता करते हुए क्यों देखे गये हैं। वह क्या वजह है कि सत्ता के गलियारों का मोह उन्हें ज्यादा भाया है। ऐसे पत्रकारों के नाम गिनाने की अब जरुरत नहीं हैं। उनकी तर्ज पर चलने वालों को भी लोग जानते हैं। हां, ऐसे समय में भी ज्योतिर्मय डे या डोभाल जैसे कुछ पत्रकार रहे हैं जिन्होने जोखिम उठाई है। पी साईनाथ या अजीत भट्टाचार्य जैसे पत्रकार भी रहे हैं जिन्होंने अच्छे वेतन के बजाय अच्छा और समाज सरोकारी काम ज्यादा पसंद किया। पर ऐसे पत्रकारों की संख्या कम रही है। ये लोग सुरक्षा, सुविधा या अधिकार सम्पन्नता के साथ या उसके कारण जोखिम नहीं उठा रहे थे। ये दरअसल, गांधी, तिलक, विद्यार्थी या प्रभाष जोषी की परम्परा को आगे बढ़ा रहे थे। वे यह जानकर पत्रकारिता कर रहे थे कि यह सेवा का क्षेत्र है। वे यह जानकर पत्रकारिता का चुनाव कर रहे थे कि इसके सहारे बेहतर समाज बनाने के विमर्श को आगे बढ़ाया जा सकेगा और इसमें कहीं चूक होगी तो वे तत्काल आईना दिखा सकेंगे। इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि सुरक्षा और सुविधा या मोटी तनख्वाह पत्रकारिता को सेवा की भावना से जोड़ती है या जोखिम उठाने की प्रेरक होती है।

इस पर कोई ठीक-ठीक अनुसंधान नहीं हुआ है या उन कारणों का गहरा अध्ययन या विश्लेषण नहीं किया गया है कि सेवा की प्रवृत्ति के बजाय मुनाफे की इच्छा वाले मालिक पहले प्रेस में और बाद में मीडिया में क्यों आये। यह मुहावरा कैसे और क्यों बदल गया कि अब अखबार या मीडिया बरबादी के बजाय अमीरी का रास्ता है। यह अब तो ज्यादा बेमानी बहस है क्योंकि शिक्षा, चिकित्सा और दूसरे जनसेवा के क्षेत्र में आये हैं। मीडिया सत्ता के करीब जिस आसानी और प्रभाव से ले जाता है, उतनी आसानी से पूंजी या अन्य कोई साधन नहीं ले जा पाता है। प्रतिष्ठा, प्रभाव और मुनाफा वे आसान कारण हैं जिनके होने से मालिक की प्रवृत्ति बदली और उनकी बदली प्रवृत्ति से ही तो पत्रकारिता बेपटरी हो गई है और उसका सामाजिक सरोकार कम हो गया है या पूरी तरह से समाप्त हो गया हैं। हां इसको उस दिशा में मोड़ने के लिए राजनीति और प्रशासन से जुड़े उन लोगों का योगदान है जो अपने हितों और स्वार्थों के लिए उसका उपयोग करना चाहते रहे हैं। यह ऐसा गठबंधन बना है जिसे तोड़ना सहज और आसान नहीं है पर यह भी सच है कि यह गठबंधन बेपर्दा होते ही कमजोर हो जाता है। रुपर्ट मर्डोक जैसे महाबली को अपना डेढ़ सौ वर्ष पुराने न्यूज ऑफ द वर्ल्ड को बंद करना पड़ा। जैसे ही लोगों को पता चला कि यह समाचारपत्र टेलीफोन टेप करके दलाली और अनैतिक वसूली ही नहीं कर रहा है वरन इसने हत्याएं भी करवाई हैं, लोगों को नफरत हो गई। उस नफरत के कारण ही रुपर्ट को उसे बंद करना पडा। यहाँ भी ऐसे उदाहरण हैं, पर कम हैं।

इस सिलसिले में एक सच यह भी है कि अवसर दिये जाने पर भी पत्रकार अपने समाचारपत्र को उस व्यवसायिक सफलता से नहीं चला सके जिसकी वे आलोचना करते रहे हैं। नागपुर से प्रकाशित युगधर्म इसका उदाहरण है। उससे पूर्व भी उद्घोष नाम का समाचार पत्र भी नवभारत से बाहर आये पत्रकारों की कोशिशों के बावजूद नहीं चल सका। कुछ अन्य उदाहरण हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि समाचारपत्र या मीडिया सम्पादन, प्रबंधन तथा विपणन की संयुक्त टीम का परिणाम है। इस दृष्टिकोण को कम ही पत्रकार स्वीकार करते हैं इसलिए मीडिया या समाचारत्र की भूमिका पर चर्चा करते हुए किसी फौरी उपाय के बजाय इसकी जरुरतों को पहचान कर न केवल बोलें वरन प्रयोग करके भी देखना चाहिए। इस तरह के प्रयोग जिनमें सहकारी प्रयास भी शामिल हों, वह विकल्प बन सकते हैं जिनसे सरोकारी, ध्येयनिष्ठ तथा मूल्यनिष्ठ पत्रकारिता की जा सकती है और वह इस व्यावसायिकता का विकल्प भी हो सकती है जो केवल मुनाफे के लिए की जा रही है। हां, इस सबका आधार मूल्यनिष्ठ पत्रकारिता ही होगा।